तिथि
30.4.2020

Topic SL. No.
शीर्षक - क्रम सं०- (45)

स्नातक द्वितीय खंड
हिन्दी (प्रतिष्ठा)
B.A Hindi (Hons.)
D II

अज्ञेय के काव्य में सामाजिक - अनुभूति

(पत्र - चतुर्थ IV)

कवि जिस परिवेश में जीता है, उसे जैसी अंदर और बाहर की परिस्थितियाँ मिलती हैं। उनका प्रभाव उसके सृजन में अवश्यंभावी है।

अज्ञेय आरंभ में स्वातंत्र्य आंदोलन के उस पृष्ठभूमि के कार्यकर्त्ता थे जो गुप्त रूप से आतंक - प्रसार के माध्यम से स्वतंत्रता पाने का विश्वासी विश्वासी था। फलतः अज्ञेय को कारावास जीवन भी व्यतीत करना पड़ा। इस कारावास_जीवन में रचित कविताओं के रूप में ही अज्ञेय की सामाजिक अनुभूति आरंभ में व्यक्त होती है। अज्ञेय की आरंभिक कविताओं में द्वन्द्वा--त्मक मनः स्थिति प्रकट हुई है, जिसमें वे कहते हैं-

" रण क्षेत्र जाने से पहले सैनिक जीवन जी भर
रो लो।"

यह पंक्ति कवि को मनुष्य भले ही बना दे, किंतु सैनिक की उपाधि एवं शौर्य परंपरा को आयाम कवि को नहीं देगी। वह इसी मानव-सहजता

का विस्तार करता है और 'पराजय गान' गाता है। उसका समाज को समर्पित 'स्व' अंतर्मुखी हो जाता है। वह 'विजित, तिरस्कृत, घायल और क्लांत' अंगों को लेकर 'जाने किस आशा में' घर को लौट आया है। और कुल मिलाकर वह अपने आरंभिक अभियान में सैनिक 'अग्रदूत' है। किन्तु अपने दूसरे अभियान में सैनिक को रौंने के लिए कहने वाला कवि अपना व्यक्तित्व 'उद्धत विद्रोही' रूप में प्रकट करता है।—

"तुम्हारा यह उद्धत विद्रोही
घिरा हुआ है जग से, पर है सदा अलग निर्मोही।
जीवन-सागर हहर-हहर कर
उसे लीलने आता दुर्धर
पर वह बढ़ता ही जाएगा लहरों पर आरोही।"

• वे बंदी-गृह की खिड़की से ही शत्रु को ललकारता है कि 'जाग कि तेरा आसन डांवाडोल' हो रहा है।

आरंभिक काल में कवि हारिल पक्षी को अपने जीवन का प्रतीक मानता है। हारिल के हाथों का तिनका कवि की सर्जन-चेष्टा के भवितव्य का प्रतीक है और उसके उड़ते हुए डैने कवि की गतिशील जीवन अनुभूति के। इस दृढ़ जीवन के प्रति आस्था के साथ वह 'वंचना के दुर्ग' के ध्वंस की ओर

कहता है और संपूर्ण रूढ़ि-ग्रस्त अन्याय के ठेकेदारों, पूँजीपतियों, ज़मीनदारों, अधिकारियों, पुरोहितों, साम्राज्यवादी सत्ताधारियों को क्रमशः घृणा का गान सुनाता है।

"आज तुम्हें ललकार रहा हूँ सुनो घृणा का गान।"

~~अपने एक को~~

धीरे-धीरे कवि आस्था की उस सीमा को पहुँचा, जिसे वैसी तटस्थता कहना उचित होगा जो अनास्था और नैराश्य की कोख से जन्म लेती है। समय आने पर आत्म-आलोचना के अवसरों पर कवि पहचानता है कि उसकी इस प्रकार की विचारणा के पीछे उसका अहंवाद स्पष्ट है-

'अहं! अंतर्गुहावासी! स्वरति! क्या मैं चीन्हता
कोई न दूजी राह
जानता क्या नहीं निज में
बद्ध होकर है नहीं निर्वाह?

'नदी के द्वीप' कविता में एक विचित्र स्थितिशील (Static) आत्मकेन्द्रित और अहंलीन स्वरूप में पर्यवसित हो जाती है—

"किन्तु हम हैं द्वीप
हम धारा नहीं हैं
स्थिर समर्पण है हमारा।"

× ×

यह निष्क्रिय नियतिवादिता, द्वीपवत् स्थिति-

शीलता, अस्तित्व संकट की शंका, आकुलता अज्ञेय के अंहवाद की वह परिणति है जो सामूहिक विकास की धारणाओं के ही विपरीत नहीं, बल्कि उनके व्यक्तित्व की पूर्व-परिचित दीप्ति को भी मंद करती है। इसे अस्तित्ववादी जीवन दर्शन का आंशिक प्रभाव एवं मोह का आवेग भी कह सकते हैं। किंतु 'धारा नहीं है' के विश्वास का खंडन आगे चलकर अज्ञेय स्वयं कर देते हैं-

" यह वह विश्वास, नहीं जो अपनी लघुता में भी काँपा,
वह पीड़ा जिसकी गहराई को स्वयं उसी ने नापा
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुंधुआते कड़वे तम में
यह सदा द्रवित चिर जागरूक, अनुरक्त, नेत्र
उल्लम्ब बाहु, यह चिर अखंड अपनाया।
जिज्ञासु, प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय
इसको भी भक्ति को दे दो।"

इस कविता में अज्ञेय अपने उस 'मैं' को दीपवत् प्रतिष्ठित करते हैं जो धारा में विसर्जित है, अपना आलोक-विस्तार करते हुए। वह बहने के लिए पूर्वपरिचित दीप्ति को पुनः पाने लगा है। वह व्यक्ति से कट कर समष्टि के साथ जुड़ने लगता है और इसी कारण उसे इसका पश्चाताप है कि उससे उस विशाल 'स्त्रोतस्विनी' में वह नहीं गया।

व्यक्तित्व का अपमान साहित्य में हो यह व्यक्ति--त्व को स्वीकार नहीं, किंतु समष्टि को जो उसका सहज देय है उसको देना ही होगा। अज्ञेय क्रमशः उस ऊर्ध्व भूमिका की ओर उठते हैं जो स्वस्थ-सहज समाजोन्मुखता को प्रश्रय देती है। यही कारण है कि वे अपनी कविता 'मैं यहाँ हूँ' में अपनी कल्पना सेतु-रूप में करते हैं।

इसके बाद कवि के सम्मुख 'अमरत्व' बस यही एक है कि समष्टि में उसकी 'अस्मिता-विलय' हो जाए -

"पर मनुज से नहीं कहीं कुछ
इसी तर्क से जीवन स्वतः प्रमाण है
दो, दो खुले हाथ से दो
कि अस्मिता-विलय एकमात्र कल्याण है।"

कवि अतीत की भूल को भी स्वीकार करता जाता है -

"अब हम फिर साथ हैं
न जाने कैसे, प्रमादवश, थोड़ा भटक गये थे।
× × ×
आस्था न काँपे, मानव फिर
मिट्टी का भी देवता हो जाता है
तेरा वरद मेरा अभयद यों हमारे साथ है।"

कवि 'हमने पौधे से कहा' शीर्षक कविता में उन लोगों पर व्यंग्य करता है, जो मिट्टी को उपेक्षणीय

Scanned with CamScanner

मानते हैं। वह 'हवाई यात्रा' करने और 'ऊँची उड़ान' भरने वाले कवि को याद दिलाते हैं कि 'पृथ्वी पर चीकट कंबल की नई घुटन को : मानव का समूह-जीवन इस झिल्ली में ही पनप रहा है।'

इस स्तर पर आकर अज्ञेय भले ही अपनी अस्मिता को दीप्त रखना चाहें, किन्तु उस दीप्ति में जन-सामान्य का तिरस्कार नहीं है। उनकी भावना उस परिप्रेक्ष्य को पाना चाहती है जहाँ वह अहंता और सामाजि-कता के संग्रह-त्याग की प्रवृत्ति को छोड़कर आगे जाएगी।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अहं, अस्मिता और व्यक्ति की रक्षा करते हुए भी अज्ञेय ने समष्टि एवं उसकी हित-साधना की उपेक्षा नहीं की है। उनकी कविता व्यक्ति के साथ-साथ समष्टि जीवन को भी अनुभूतियों का संबल प्रदान करने वाली है। उसी में उसका वास्तविक सौष्ठव एवं अभिव्यंजना की सफलता-सार्थकता भी है।

— डॉ० आरती प्रसाद
सह प्राचार्य,
हिन्दी-विभाग
राम नारायण महाविद्यालय
पण्डौल, मधुबनी
मो० नं०- 9955839898